शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अप्रैल 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

सम्पादकीय

समाज सेवा का सिमटता दायरा

डॉ. पुष्पेन्द्र दुबे

समाज सेवा शब्द जब कानों में पडता है तब मन पवित्र भाव से भर जाता है। उन व्यक्तियों का स्मरण अनायास हो आता है, जिन्होंने अपना सर्वस्व अंतिम व्यक्ति के उत्थान में समर्पित कर दिया। मनुष्य जीवन को अर्थ प्रदान करने के लिए स्वयं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया। समाज जिनकी सेवाओं को याद कर आज भी कृतज्ञता के सागर में डूब जाता है। ऐसे समाज सेवक आज भी ज्योति स्तंभ की भांति खडे होकर समाज को राह दिखा रहे हैं।

शब्दों का अर्थ विस्तार और अर्थ संकोच सतत चलने वाली प्रक्रिया है। कभी समाज सेवा का अर्थ बहुत व्यापक हुआ करता था। महात्मा गांधी के 18 रचनात्मक कार्यक्रम समाज सेवा के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए एकदम उपयुक्त हैं। इसी प्रकार विनोबा भावे का भूदान ग्रामदान आंदोलन और सर्वोदय समाज की रचना ने भी समाज सेवा शब्द को स्थापित किया। गांधी विचारधारा ने समाज सेवा को राष्ट्र से जोड़ते हुए साधन शुध्दि पर विशेष जोर दिया। समाज सेवा की बुनियाद अध्यात्म पर ही टिक सकती है, इसके अनेक प्रयोग कर समाज जीवन में नये मूल्य दाखिल किए। आज यह आध्यात्मिक तत्व तिरोहित है गया है।

हाल के वर्षों में, खासकर उदारीकरण की नीतियों को अपनाने के बाद समाज सेवा का अर्थ बहुत संकुचित हो गया है। स्वयं सेवी संगठनों (एनजीओ) की भीड ने भूतदया के काम को ही समाज सेवा मान लिया। स्वयं सेवी संगठन मूल्य परिवर्तन के विचार से दूर हो गये। स्वयं सेवी संगठनों की रचना इस प्रकार की है कि उनके द्वारा दायें हाथ से की जाने वाली मदद बायें हाथ में वापस आ जाती है। इससे समाज वहीं की वहीं कदमताल करता नजर आता है। उदारीकरण की नीति के बाद कुकुरमुत्तों की भांति पनपे स्वयं सेवी संगठनों ने समाज सेवा और सेवकों को परिभाषा ही बदल दी। त्याग, तपस्या, बलिदान के बदले समाज सेवा भी विलासिता में तब्दील हो गयी है। समाज सेवा को कॅरियर निर्माण के नये क्षेत्र के रूप में प्रचारित किया जाता है, जिसमें ऊंचे वेतनमान के साथ चमक-दमक दिखायी देती है। आज समाज सेवकों की फौज खड़ी है, परंतु समाज के नैतिक उत्थान पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है।

दूसरी ओर समाज सेवा का आशय अपने समाज की सेवा के लिए भी रूढ है गया है। व्यक्ति अपने दैनंदिन काम से थोड़ा समय चुराकर अपने समाज बंधुओं के लिए थोड़ी बहुत हलचल करता है और उसे समाज सेवा मानकर संतोष कर लेता है। इस विचार ने समाज सेवा के व्यापक समुद्र को छोटे से डबरे में बदल दिया है। इसमें उछल-कूद कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेता है। आधुनिक जीवन शैली में समाज सेवा को मनोरंजन का क्षेत्र मान लिया गया है।

अपने समाज की सेवा का लाभ वर्ग विशेष को मिलता है, परंतु अंतिम व्यक्ति इससे वंचित रह

जाता है। ऐसे सामाजिक संगठनों पर राजनीतिक दलों की निगाह बनी रहती हैं। अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए ऐसे सामाजिक संगठनों का पालन-पोषण करते अनेक राजनीतिक दल मिल जाएंगे। इन दिनों इनकी संख्या में अप्रत्याशित वृध्दि हुई है। अपने राजनीतिक हित साधने के लिए ऐसे सामाजिक संगठन प्रतिनिधित्व की मांग भी करते दिखायी दे जाते हैं। फलत: समाज का नेतृत्व करने वाले पुरोधा व्यापक दृष्टि के अभाव में समाज अथवा दल विशेष के प्रतिनिधि बनकर रह जाते हैं। इस वृत्ति के कारण समाज सेवा शब्द और नीचे गिरकर 'समाज के ठेकेदार' में बदल गया है।

कहने का आशय यह है कि समाज सेवा संस्थाबध्द होकर आमजन से दूर जा पड़ी हैं। समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक इत्यादि संस्थाएं समाज सेवा का ही परचम उठाए हुए हैं, लेकिन उनमें दिन-रात चलने वाली खींचतान से आमजन अनभिज्ञ नहीं है। आज समाज सेवा 'मैं' और 'मेरा' में सिमट गयी है। वर्चस्व की भावना ने समाज सेवा को अत्यधिक क्षति पहुंचाई है। महापुरुषों द्वारा स्थापित संस्थाओं की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। जिन संस्थाओं पर समाज को 'मुक्त' करने की जिम्मेदारी थी, वे स्वयं को 'बंद' करके बैठ गयी हैं। इन संस्थाओं में 'ताजा हवा' को प्रवेश करने की मनाही है। आज 'समाज सेवा' के उन मूल्यों को पुन: स्थापित करने की आवश्यकता है, जिसने इस देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त किया था।